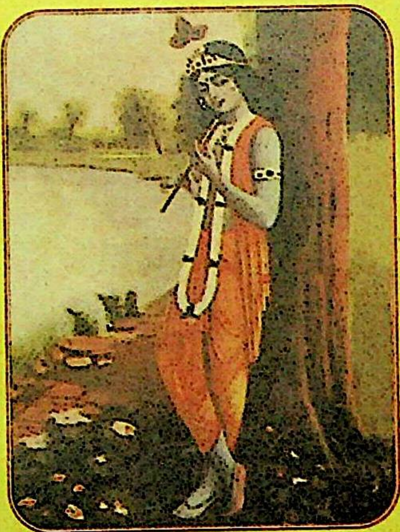
॥ श्रीहरिः ॥

1441△

संसारका असर कैसे छूटे ?



स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

1441

संसारका असर कैसे छूटे ?

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

प्रकाशक— गोबिन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०५९ प्रथम संस्करण १०,०००
सं० २०५९ द्वितीय संस्करण १०,०००
योग २०,०००

मूल्य—एक रुपया पचास पैसे

मुद्रक— गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१; फैक्स २३३६९९७
website:www.gitapress.org
e-mail:booksales@gitapress.org

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची



॥ श्रीहरिः ॥

संसारका असर कैसे छूटे ?

साधकोंकी प्रायः यह शिकायत रहती है कि यह जानते हुए भी कि संसारकी कोई भी वस्तु अपनी नहीं है, जब कोई वस्तु सामने आती है तो उसका असर पड़ जाता है। इस विषयमें दो बातें ध्यान देनेयोग्य हैं। एक बात तो यह है कि असर पड़े तो परवाह मत करो अर्थात् उसकी उपेक्षा कर दो। न तो उसको अच्छा समझो, न बुरा समझो।

न उसके बने रहनेकी इच्छा करो, न मिटनेकी इच्छा करो। उससे उदासीन हो जाओ। दूसरी बात यह है कि असर वास्तवमें मन–बुद्धिपर पड़ता है, आपपर नहीं पड़ता। अतः उसको अपनेमें मत मानो।

किसी वस्तुसे राग होनेपर भी सम्बन्ध जुड़ता है और द्वेष होनेपर भी सम्बन्ध जुड़ता है। भगवान् श्रीराम वनमें गये तो उनके साथ जिन ऋषि–मुनियोंने स्नेह किया, उनका उद्धार हो गया और जिन

राक्षसोंने द्वेष किया, उनका भी उद्धार

हो गया, पर जिन्होंने न राग किया, न द्वेष किया, उनका उद्धार नहीं हुआ; क्योंकि उनका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ नहीं जुड़ा। इसी तरह संसारका असर मनमें पड़े तो उसमें राग-द्वेष करके उसके साथ अपना सम्बन्ध मत जोड़ो। आप भगवान्‌के भजन-साधनमें लगे रहो। संसारका असर हो जाय तो होता रहे, अपना उससे कोई मतलब नहीं— इस तरह उसकी उपेक्षा कर दो।

जैसे आप कुत्तेके मनके साथ अपना कोई सम्बन्ध नहीं मानते, ऐसे ही अपने

मनके साथ भी अपना कोई सम्बन्ध मत मानो। कुत्तेका मन और आपका मन एक ही जातिके हैं। जब कुत्तेका मन आपका नहीं है तो यह मन भी आपका नहीं है। मन जड़ प्रकृतिका कार्य है, आप चेतन परमात्माके अंश हो। जैसे कुत्तेके मनमें संसारका असर पड़नेसे आपमें कोई फर्क नहीं पड़ा, ऐसे ही इस मनका भी आपमें कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिये।

मनका सम्बन्ध प्रकृतिके साथ है और आपका सम्बन्ध परमात्माके साथ

है। आपने मनके साथ अपना सम्बन्ध मान लिया तो अब दुःख पाना ही पड़ेगा। अब आप मनसे, शरीरसे जो काम करोगे, उसका पाप-पुण्य आपको लगेगा ही। कुत्तेके मनमें कुछ भी आये, उससे आपको क्या मतलब? ऐसे ही इस मनमें कुछ भी आये, उससे आपको क्या मतलब? आपका सम्बन्ध शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिके साथ नहीं है, प्रत्युत परमात्माके साथ है—इस बातको समझानेके लिये ही गीतामें भगवान् कहते हैं—'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः

सनातनः' (१५। ७) 'इस संसारमें जीव बना हुआ आत्मा मेरा ही सनातन अंश है'। इस बातको समझ लो तो आपकी वृत्तियोंमें, आपके साधनमें फर्क पड़ जायगा।

आप अपनेको 'मैं हूँ'—इस तरह जानते हैं। इसमें 'मैं' तो जड़ है और 'हूँ' चेतन है। 'मैं' के कारणसे 'हूँ' है। अगर 'मैं' (अहम्) न रहे तो 'हूँ' नहीं रहेगा, प्रत्युत केवल 'है' (चिन्मय सत्तामात्र) रह जायगा। इसी बातको

गीतामें भगवान्ने कहा है कि जब साधक

निर्मम-निरहंकार हो जाता है, तब उसकी स्थिति ब्रह्ममें हो जाती है—'एषा ब्राह्मी स्थितिः' (गीता २। ७२)।

अहंकार हमारा स्वरूप नहीं है। अहंकार अपरा प्रकृति है और हम परा प्रकृति हैं। हम अलग हैं, अहंकार अलग है। जैसे जाग्रत् और स्वप्नमें अहंकार जाग्रत् रहता है, पर सुषुप्तिमें अहंकार जाग्रत् नहीं रहता, प्रत्युत अविद्यामें लीन हो जाता है। सुषुप्तिमें अहंकार न रहनेपर भी हम रहते हैं। हमारा स्वरूप अशरीरी है। जैसे भगवान्

अव्यक्त हैं*, ऐसे ही उनका अंश होनेसे हम भी स्वरूपसे अव्यक्त (निराकार) हैं। अव्यक्तमूर्तिका अंश भी अव्यक्तमूर्ति ही होगा। यह शरीर तो भोगायतन (भोगनेका स्थान) है। जैसे हम रसोईघरमें बैठकर भोजन करते हैं, ऐसे ही हम शरीरमें रहकर कर्मफल भोगते हैं। इसलिये साधकको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि मैं

* मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
(गीता ९।४)

'यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूपसे व्याप्त है।'

अव्यक्त (निराकार)–रूप हूँ, मनुष्यरूप नहीं हूँ। साधन करनेवाला शरीर नहीं होता। इसीलिये हम कहते हैं कि मैं बचपनमें जो था, वही मैं आज हूँ। बचपनसे लेकर आजतक हमारे शरीरमें इतना फर्क पड़ गया कि पहचान भी नहीं सकते, फिर भी हम वही हैं। बचपनमें मैं खेला करता था, बादमें पढ़ता था, वही मैं आज हूँ। शरीर वही नहीं है। शरीर तो एक क्षण भी नहीं रहता, निरन्तर बदलता रहता है। जो

नहीं बदलता, वही साधक है। बदलनेवाला

साधक नहीं है।

साधक योगभ्रष्ट होता है तो वह दूसरे जन्ममें श्रीमानोंके घर जन्म लेता है अथवा योगियोंके घर जन्म लेता है। शरीर तो मर गया, जला दिया गया, फिर श्रीमानों अथवा योगियोंके घर कौन जन्म लेगा? वही जन्म लेगा जो शरीरसे अलग है। इसलिये आप इस बातको दृढ़तासे स्वीकार कर लें कि हम शरीर नहीं हैं, प्रत्युत शरीरको जाननेवाले हैं। इस बातको स्वीकार किये बिना साधन बढ़िया नहीं होगा, सत्संगकी बातें ठीक समझमें नहीं आयेंगी।

शरीर तो प्रतिक्षण बदलता है, पर

आप महासर्ग और महाप्रलय होनेपर भी नहीं बदलते, प्रत्युत ज्यों-के-त्यों एकरूप रहते हैं—'सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।' (गीता १४। २)।

आपने अबतक कई शरीर धारण किये, पर सब शरीर छूट गये, आप वही रहे। शरीर तो यहीं छूट जायगा, पर स्वर्ग या नरक़में आप जाओगे, मुक्ति आपकी होगी, भगवान्‌के धाममें आप पहुँचोगे। तात्पर्य है कि आपकी सत्ता (स्वरूप) शरीरके अधीन नहीं है। अतः शरीरके रहते अथवा न रहनेसे आपकी सत्तामें

कोई फर्क नहीं पड़ता। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, अनन्त सृष्टियाँ हैं, पर उनका आपपर रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ता। केश-जितनी चीज भी आपतक नहीं पहुँचती। ये सब मन-बुद्धितक ही पहुँचती हैं। प्रकृतिका कार्य मन-बुद्धिसे आगे जा सकता ही नहीं। इसलिये अनन्त ब्रह्माण्डोंमें केश-जितनी चीज भी आपकी नहीं है। आपके परमात्मा हैं और आप परमात्माके हो। साधन करके आप ही परमात्माको प्राप्त होंगे, शरीर प्राप्त नहीं

होगा। इसलिये साधन करते हुए ऐसा

मानना चाहिये कि हम निराकार हैं, साकार (शरीर) नहीं हैं। आप मकानमें बैठते हैं तो आप मकान नहीं हो जाते। मकान अलग है, आप अलग हैं। मकानको छोड़कर आप चल दोगे। फर्क आपमें पड़ेगा, मकानमें नहीं। ऐसे ही शरीर यहीं रहेगा, आप चल दोगे। पाप-पुण्यका फल आप भोगोगे, शरीर नहीं भोगेगा। मुक्ति आपकी होगी, शरीरकी नहीं होगी। शरीर तो मिट्टी हो जायगा, पर आप मिट्टी नहीं होंगे। आपका स्वरूप गीताने

इस प्रकार बताया है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽय-
मक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणु-
रचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽय-
मविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं-
नानुशोचितुमर्हसि॥

(२। २४-२५)

'यह शरीरी काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, यह गीला

नहीं किया जा सकता और यह सुखाया

भी नहीं जा सकता। कारण कि यह नित्य रहनेवाला, सबमें परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाववाला और अनादि है।'

'यह देही प्रत्यक्ष नहीं दीखता, यह चिन्तनका विषय नहीं है और यह निर्विकार कहा जाता है। अतः इस देहीको ऐसा जानकर शोक नहीं करना चाहिये।'

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि मैं कभी मरूँ नहीं, मैं सब कुछ जान जाऊँ और मैं सदा सुखी रहूँ। ये तीनों इच्छाएँ मूलमें सत्, चित् और आनन्दकी इच्छा

है। परन्तु वह इस वास्तविक इच्छाको शरीरकी सहायतासे पूरी करना चाहता है; क्योंकि स्वयं परमात्माका अंश होते हुए भी वह शरीर–इन्द्रियाँ–मन–बुद्धिको अपना मान लेता है*। परन्तु वास्तवमें मनुष्य अपनी वास्तविक इच्छाको शरीर अथवा संसारकी सहायतासे पूरी कर ही नहीं सकता। कारण कि शरीर नाशवान् है, इसलिये उसके द्वारा कोई मरनेसे

---

* ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥
(गीता १५।७)

नहीं बच सकता। शरीर जड़ है, इसलिये उसके द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता। शरीर प्रतिक्षण बंदलनेवाला है, इसलिये उसके द्वारा कोई सुखी नहीं हो सकता। इसलिये मनुष्यमें जो सत्‌-चित्‌-आनन्दकी इच्छा है, उसकी पूर्ति शरीरसे असंग (सम्बन्ध-रहित) होनेपर ही हो सकती है। इस वास्तविक इच्छाकी पूर्तिमें शरीर लेशमात्र भी साधक अथवा बाधक नहीं है, प्रत्युत शरीरका सम्बन्ध ही इसमें बाधक है। इसलिये शरीरसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर साधक क्रिया

और पदार्थसे असंग हो जाता है। क्रिया और पदार्थ—दोनों प्रकृतिके कार्य हैं। क्रिया और पदार्थसे असंग होनेपर साधककी वास्तविक इच्छा पूरी हो जाती है। वास्तविक इच्छाकी पूर्ति होनेपर साधककी सत्-चित्-आनन्दरूप स्वरूपमें स्थिति हो जाती है। स्वरूपमें स्थिति होनेपर लौकिक साधना (कर्मयोग तथा ज्ञानयोग)-की सिद्धि हो जाती है। फिर स्वरूप जिसका अंश है, उस परमात्माको अपना माननेसे, उसके शरणागत होनेसे अलौकिक साधना

(भक्तियोग)-की सिद्धि हो जाती है अर्थात् परम प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। परम प्रेमकी प्राप्तिमें ही मनुष्यजन्मकी पूर्णता है*। इसलिये साधकको आरम्भसे ही इस सत्यको स्वीकार कर लेना चाहिये कि मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है। कारण कि मैं परा प्रकृति (चेतन) हूँ, जो कि परमात्माका अंश है और शरीर-

* लौकिक साधनाकी सिद्धिमें तो अहम्‌की सूक्ष्म गन्ध रह सकती है, पर अलौकिक साधनाकी सिद्धिमें अहम्‌की सूक्ष्म गन्ध भी नहीं रहती।

संसार अपरा प्रकृति (जड़) है। अपरा प्रकृति अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी हमारी वास्तविक इच्छाकी पूर्ति नहीं कर सकती अर्थात् हमें अमर नहीं बना सकती, हमारा अज्ञान नहीं मिटा सकती और हमें सदाके लिये सुखी नहीं कर सकती।

प्रश्न—सत्संगमें ऐसी बातें सुनते हुए भी जब व्यवहार करते हैं, तब राजी-नाराज हो जाते हैं, क्या करें?

उत्तर—व्यवहारमें राजी-नाराज हो जाते हैं तो यह बालकपना है। बच्चे

खेलते हैं तो वे मिट्टी इकट्ठी करके पहाड़, मकान आदि बना देते हैं और उसमें लाइन खींच देते हैं कि इतनी जमीन मेरी है, इतनी तुम्हारी है। दूसरा बच्चा जमीन ले लेता है तो लड़ने लग जाते हैं कि तुमने हमारी जमीन कैसे ले ली? यह तुम्हारी नहीं, हमारी है। कोई बड़ा आदमी आकर कहता है कि 'बच्चो! लड़ते क्यों हो?' वे कहते हैं कि हमने पहले लकीर खींची है, इसलिये यह हमारी है। वह आदमी कहता है कि अच्छा, तुम ऐसा लेखा कर दो तो दोनों

राजी हो जाते हैं। इतनेमें माँ बुलाती है कि 'अरे बच्चो! आओ, भोजनका समय हो गया' तो बच्चे झट उठकर चल देते हैं। अब उनका जमीनसे कोई मतलब नहीं! इसी तरह हम कहते हैं कि धन-सम्पत्ति हमारी है, जमीन हमारी है आदि। वास्तवमें न हमारी है, न तुम्हारी है। यह तो खेल है, तमाशा है! एक दिन धन-सम्पत्ति, जमीन आदि सबको छोड़कर जाना पड़ेगा। इनकी यादतक नहीं रहेगी। पिछले जन्ममें हमारा कौन-सा घर था, कौन-सा कुटुम्ब था, अब याद है क्या?

इस संसारकी कोई भी वस्तु व्यक्तिगत नहीं है। जैसे, धर्मशाला सबके लिये होती है, ऐसे ही यह संसार सबके लिये है। इसलिये मकान वही रहते हैं, जमीन वही रहती है, पर आदमी बदलते रहते हैं। इन बातोंकी तरफ आपका ध्यान जाना चाहिये। सत्संग करनेवालोंका इन बातोंकी तरफ ध्यान नहीं जायगा तो फिर किसका जायगा? सत्संग भी करते हो और राग-द्वेष भी करते हो तो वास्तवमें सत्संग किया ही नहीं, सत्संग सुना ही नहीं, सत्संग समझा ही नहीं, सत्संगकी

हवा ही नहीं लगी! सत्संगमें राग-द्वेष, काम-क्रोध कम नहीं होंगे तो फिर कैसे कम होंगे? यदि आपके भावोंमें, आचरणोंमें फर्क नहीं पड़ा तो सत्संग क्या किया! कोरा समय खराब किया! सत्संग करे और फर्क नहीं पड़े—यह हो ही नहीं सकता। सत्संग करेगा तो फर्क जरूर पड़ेगा। फर्क नहीं पड़ा तो असली सत्संग मिला नहीं है। असली सत्संग मिले तो फर्क पड़े बिना रह सकता ही नहीं।

मनकी खटपट कैसे मिटे?

प्रश्न आया है कि मनकी खटपट (हलचल, अशान्ति) कैसे मिटे?

बहुत सीधी सरल बात है कि मनमें जो खटपट है, वह अपने जाननेमें आती है। तो जाननेमें जो चीज आती है, देखनेमें जो चीज आती है, वह अपना स्वरूप नहीं होती है। मेरेको मकान दिखा, तो क्या मैं मकान हो गया? मेरेको एक पत्थर दीख गया, तो क्या मैं पत्थर हो गया? दीखनेवाली चीज

अलग होती है और देखनेवाला अलग होता है। इसमें सन्देह नहीं है। खटपट होती है—इसका जिसको ज्ञान है वह आप हो। आप खटपटको देखनेवाले हुए। इसमें सन्देह है क्या ? खटपटको हम देखते हैं और खटपट दीखनेवाली हुई तो हमारे क्या बाधा लगी ? हमारेको पत्थर दीखा, वह तप गया तो हमें क्या, और वह ठण्डा हो गया तो हमें क्या ?

यह जो मनका एक सङ्कल्प है कि यह खटपट न रहे यही खटपटका कारण है; क्योंकि इस सङ्कल्पसे ही खटपटसे सम्बन्ध बना रहता है। मेरे

मनमें खटपट न रहे, तो बस, अब खटपट मचेगी। इसलिये मनसे ही अपना सम्बन्ध तोड़ देना है। वास्तवमें मनसे सम्बन्ध है नहीं। केवल माना हुआ सम्बन्ध है। मनको आपने अपना माना है, खटपटको आपने अपनेमें माना है। खटपट पैदा होती है और मिटती है, सङ्कल्प उत्पन्न होते हैं और मिटते हैं, पर आप वही रहते हो। इसमें कोई सन्देह है क्या? तो ये मिटें या न मिटें, इनको आप छोड़ दो। आप इनके साथ मिलो मत, इनसे राजी और नाराज मत होओ। खटपटसे राजी होना भी

उससे मिलना है और नाराज होना भी उससे मिलना है। साधकके लिये यह बहुत बढ़िया चीज है। बस, आप राजी और नाराज मत होओ। जैसे धूप आयी और धूपसे स्वाभाविक मन हटता है, तो छायामें बैठ जाओ। पर न धूपके साथ विरोध करो, न छायाकी प्रशंसा करो। न किसीसे विरोध करना है, न प्रशंसा करनी है, यह साधकका खास काम है।

ज्ञानयोगी, कर्मयोगी, भक्तियोगी किसी भी साधनामें चलनेवाला योगी हो, जो परिस्थिति आये, उसमें राजी और नाराज

न होना सबका काम है, योगिमात्रका काम है। जो परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति चाहता है, उसके लिये यह बहुत आवश्यक है। कितनी ही सुन्दर चीज मिले, कितनी ही असुन्दर चीज मिले, कितनी ही अनुकूलता आये, कितनी ही प्रतिकूलता आये, उन दोनोंमें जो सुखी और दुःखी नहीं होता है, वह परमात्माको प्राप्त करता है और जो सुखी और दुःखी होता है, वह संसारमें आता-जाता है, अर्थात् जन्मता-मरता है।

अनुकूलता-प्रतिकूलता तो सबके आयेगी। जिसके घोड़े हाँकते हैं, उस

अर्जुनको भगवान् कहते हैं कि—भैया! ये तो '**शीतोष्णसुखदुःखदाः**' हैं। इनको तुम सहन कर लो—'**तांस्तितिक्षस्व**' (गीता २। १४)। इसको मैं मिटा दूँगा, ऐसा नहीं कहा। सहन करनेके लिये कहा।

राग-द्वेषके वशीभूत न होवे। ठीक और बेठीक मानकर सुखी-दुःखी न होवे। इनकी चिन्ता न करे। फिर सब ठीक हो जायगा। कितनी ही खटपट आवे, आप सुखी-दुःखी मत होओ। यह तो आने-जानेवाली है। इसका मन्त्र है—'**आगमापायिनोऽनित्याः**' यह मन–

ही-मन जपो। इस भावसे जपो कि यह तो आने-जानेवाली है, अनित्य है। अच्छी या मन्दी कैसी क्यों न हो, खटपट आते ही यह सूत्र (मन्त्र) लगा दो कि '**आगमापायिनोऽनित्याः**', ये आने-जानेवाली और अनित्य हैं। अनुकूल-से-अनुकूल आये, तो आने-जानेवाली है। प्रतिकूल-से-प्रतिकूल आये, तो आने-जानेवाली है। बिलकुल सच्ची बात है। न अनुकूलता ठहरती है, न प्रतिकूलता ठहरती है। बस, इसको इतनी जान लो कि यह ठहरनेवाली नहीं है। इसमें कोई नया काम नहीं

करना है। अब इनको लेकर क्या राजी हों और क्या नाराज हों?

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।

(गीता ५। २०)

प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें सुखी और दुःखी क्या हों? बढ़िया-से-बढ़िया परिस्थिति आये, तो वह भी ठहरेगी नहीं, पर आप ठहरते हो! क्योंकि आपके सामने अनुकूलता और प्रतिकूलता—दोनों आती हैं और जाती हैं और आप रहते हो। आप वही हो, बस अपनी तरफ ही दृष्टि रखो। ये जो आने-जानेवाली है, इनके साथ मिलो

मत—यही मुक्ति है। इनके साथ मिल जाते हो—यही बन्धन है। आने-जानेवाली खटपटके साथ, परिस्थितिके साथ मिल जाना है—बन्धन, और न मिलना है—मुक्ति। कितनी सरल, सीधी-सादी बात है!

आप कहते हो कि न चाहते हुए भी हम मिल जाते हैं, अनुकूलता-प्रतिकूलताके साथ एकदम मिलना हो जाता है, तो इसका भी उपाय है। इनसे मिल जानेपर भी यह तो ज्ञान है ही कि इनके साथ हम मिल जाते हैं, पर हम अलग हैं

और ये अलग हैं। यह बात सच्ची है कि नहीं? खटपट पैदा होती है, मिटती है; आती है, जाती है और आप रहते हो। तो खटपट और आप अलग-अलग दो हुए कि एक?

अब कहते हैं कि 'हम अभी तो जानते हैं, पर जिस समय अनुकूलता-प्रतिकूलता आती है, उस समय पता नहीं लगता। हम तो मिल जाते हैं। मिल जानेपर पीछे पता लगता है कि मिल गये।' तो पीछे पता लगते ही यह विचार करो कि हम उस समय भी

मिले नहीं थे, केवल मिला हुआ मान लिया था। वह हमारे साथ नहीं है, हम उससे अलग हैं, ऐसा सोचकर चुप हो जाओ। बस, वह मिट जायगी। मिलनेका जो सुख-दुःख है, उसको आदर देनेसे ही आपके खटपट मिटती नहीं है। उसको आदर मत दो। कह दो कि हम तो मिले ही नहीं। फिर मिट जायगी। जब खयाल आये, तब अपने-आपसे कहे कि नहीं-नहीं, हम नहीं मिले।

जब खटपट होती है, अनुकूलता-प्रतिकूलता होती है, तब तो उसमें वह

जाते हो और सुखी–दुःखी हो जाते हो। और फिर जब पता लगता है कि मैं मिल गया, तब चिन्ता करते हो कि हाय–हाय मैं उससे मिल गया! तो जिस समय उससे मिलते हो, उस समय भी उससे मिलना कभी छोड़ते नहीं, और जिस समय उससे मिले नहीं, उस समय भी उसकी चिन्ता करते हो। यही बीमारी है, दोनों समय आप उसको पकड़ लेते हो। वास्तवमें आप उससे मुक्त तो आप–से–आप होते हैं। परिस्थिति, पदार्थ बेचारे तो आपको मुक्त कर रहे हैं, पर आप

उनको पकड़ लेते हो कि हमारे खटपट रहती है, खटपट मिटती नहीं। इस तरह जिस समय खटपट नहीं होती, उस समय भी आप खटपटको पकड़े रहते हो। जब खटपट आती है, तब राग-द्वेष करके फँस जाते हो और जब नहीं आती, तब उसकी चिन्ता करके उसमें फँस जाते हो। तो ऐसा मत करो। ऐसा करके क्यों उसमें फँसो ?

भगवान् अर्जुनके रथ हाँकते हैं, उसका हुक्म मानते हैं। फिर भी भगवान्ने अर्जुनको फटकारा—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

(गीता २। ३)

'हे अर्जुन! नपुंसकताको मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतप! हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको त्यागकर युद्धके लिये खड़ा हो जा।'

अर्जुन चिन्ता करता है कि ये सब मर जायँगे, तो कुलमें पाप फैल जायगा। पाप फैलनेसे वर्णसंकर पैदा हो जायँगे, फिर पितरोंको पिण्ड नहीं मिलेगा। इनको मारनेसे बड़ा भारी पाप हो

जायगा। भगवान् कहते हैं कि अरे, पहले ही हल्ला क्यों करता है? अभी हुआ कुछ नहीं, चिन्ता ऐसे ही करता है! जो हो गया, उसकी चिन्ता करता है अथवा जो नहीं हुआ, उसकी चिन्ता करता है, तो मुफ्तमें उड़ता हुआ तीर अपनेपर लेता है! जो अभी है ही नहीं, उसकी आफत पहले ही मुफ्तमें खड़ी कर दी। तो खटपट आये तो उसमें फँस गये और चली जाय तो उसमें फँसे रहे। खटपट तो मिट जाती है, रहती नहीं, पर उसे पकड़-पकड़कर रोते हैं।

उसे क्यों पकड़ो? वह चली गयी तो मौज करो, आनन्द करो कि अब तो मिट गयी।

खटपटमें शक्ति नहीं है रहनेकी। किसीका जवान ब्याहा हुआ बेटा मर जाय, तो मोह-आसक्तिके कारण हृदयमें एक चोट लगती है। परन्तु वह मरता है, तब जैसी चोट लगती है, वैसी चोट दूसरे-तीसरे दिन नहीं रहती। पर रो-रोकर, याद कर-करके उसे रखते हैं। याद करते हैं फिर रोते हैं; इस तरह उसको पालते हैं। फिर भी वह हृदयकी

चोट एक दिन मर ही जाती है। चिन्ता-शोक मर ही जाते हैं। आप उन्हें रख सकते ही नहीं। है किसीमें ताकत कि उन्हें रख ले? कुछ वर्षोंके बाद तो चिन्ता-शोक बिलकुल मर जाते हैं। आपने तो रखनेकी खूब चेष्टा की, खूब रोये, खूब दूसरोंको सुनाया कि यों था, ऐसा था, वह चला गया। इतना शोकको पाला, फिर भी वह मर ही जाता है। मेहनत करनेपर भी नहीं रहता। इसलिये उसकी उपेक्षा कर दो। मर गया तो खत्म हो गया काम। अब क्या चिन्ता

करें और क्या रोवें? तो उसी समय शान्ति हो जाय। पर उसे पालेंगे, तो भी वह तो रहेगा नहीं। मेरी बात झूठी हो तो बोलो। तो जो मिटनेवाली थी, मिट गयी। बस खत्म हुआ काम। मिटनेवालेके साथ मिलो मत। कितनी सीधी बात है। मेरी धारणामें आप जितने बैठे हो, इसमें कोई निर्बल नहीं है, जो कि इस बातको न मान सके। आप अपनेको निर्बल मान लो, तो मैं क्या करूँ? इतना तो आप जानते हो कि मैं धोखा नहीं देता, आपके साथ विश्वासघात

नहीं करता। तो मेरी बातपर अविश्वास क्यों करो ? कोई धोखा होता हो तो बता दो कि तुम्हारी बात माननेसे यह धोखा होता है। कोई हानि हो तो बता दो। पर माननेसे लाभ होता है, इसे आप भी मानते हो और मैं भी मानता हूँ।

या तो स्वयं इसे समझनेके लिये विचार कर लो अथवा दूसरेकी बात मान लो—इनमेंसे एक कर लो। बुद्धिकी तीक्ष्णताकी जरूरत नहीं है। तीक्ष्णता सहायता कर सकती है, पर बुद्धिकी

शुद्धि (एक निश्चय) जितनी सहायता करती है, उतनी तीक्ष्णता नहीं करती। बुद्धिमें जड़ता हो या विक्षेप हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। पर इस विषयको मैं समझूँ इसी तरफ लक्ष्य हो।

वास्तवमें खटपट अपनेमें है ही नहीं—यही सार बात है।

अक्रियतासे परमात्मप्राप्ति

परमात्मतत्त्व सम्पूर्ण संसारमें समान रीतिसे परिपूर्ण है— 'मया ततमिदं सर्वम्' (गीता ९। ४), 'समोऽहं सर्वभूतेषु' (गीता ९। २९)। अगर कोई उसकी प्राप्ति करना चाहे तो वह कुछ भी चिन्तन न करे। जो

सर्वव्यापक है, उसका चिन्तन ही ही

नहीं सकता। कुछ भी चिन्तन न करनेसे हमारी स्थिति स्वतः परमात्मामें ही होती है। इसलिये परमात्मप्राप्तिका खास साधन है—कुछ भी चिन्तन न करना; न परमात्माका, न संसारका, न और किसीका। साधक जहाँ है, वहीं स्थिर हो जाय; क्योंकि वहीं परमात्मा हैं। क्रिया तो उसके लिये होती है, जो देश, काल, वस्तु आदिकी दृष्टिसे दूर हो। परन्तु जो सब जगह है, सब समय है, सब वस्तुओंमें है, सब व्यक्तियोंमें है,

सब अवस्थाओंमें है, सब परिस्थितियोंमें

है, सब घटनाओं आदिमें है, उसकी प्राप्तिके लिये क्रियाकी क्या जरूरत?

चुप होना, शान्त होना, कुछ न करना एक बहुत बड़ा साधन है, जिसका पता बहुतोंको नहीं है। कुछ करनेसे संसारकी प्राप्ति होती है और कुछ न करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। संसारका स्वरूप है—क्रिया (श्रम) और परमात्माका स्वरूप है—अक्रिय (विश्राम)। प्रत्येक क्रियाका आरम्भ और अन्त होता है, पर अक्रिय-तत्त्व ज्यों-का-त्यों रहता है। इतना ही नहीं,

उस अक्रिय-तत्त्वसे ही सम्पूर्ण क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं और उसीमें लीन होती हैं। क्रियासे शक्तिका ह्रास होता है और अक्रिय होनेसे शक्तिका संचय होता है। इसलिये साधक प्रत्येक क्रियासे पहले और क्रियाके अन्तमें शान्त (चिन्तनरहित) हो जाय। पहले शान्त होकर सुनेगा तो सुनी हुई बात विशेष समझमें आयेगी, पढ़ेगा तो पढ़ी हुई बात विशेष समझमें आयेगी। अन्तमें शान्त होनेसे सुनी हुई या पढ़ी हुई बातको धारण करनेकी

शक्ति आयेगी। क्रिया करनेसे विषमता

आती है और अक्रिय होनेसे समता आती है। इसलिये क्रिया करनेमें दो आदमी भी बराबर नहीं होते, पर कुछ न करनेमें लाखों-करोड़ों आदमी भी एक हो जाते हैं। कोई विद्वान् हो या मूर्ख हो, धनी हो या निर्धन हो, रोगी हो या नीरोग हो, निर्बल हो या बलवान् हो, योग्य हो या अयोग्य हो, कुछ न करनेमें सब एक हो जाते हैं, सबकी स्थिति परमात्मामें हो जाती है। तात्पर्य है कि अगर कुछ भी चिन्तन करेंगे तो संसारमें स्थिति होगी और कुछ भी

चिन्तन नहीं करेंगे तो परमात्मामें स्थिति होगी। वास्तवमें हमारी स्थिति स्वतः परमात्मामें ही है, पर चिन्तन करनेसे इसका भान नहीं होता। इसलिये गीतामें भगवान् कहते हैं—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥

(६। २५)

'धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा संसारसे धीरे-धीरे उपराम हो जाय और मन (बुद्धि)-को परमात्मस्वरूपमें सम्यक् प्रकारसे स्थापन करके फिर कुछ भी चिन्तन न करे।'

तात्पर्य है कि सात्त्विक बुद्धि और सात्त्विक धृतिके द्वारा क्रिया और पदार्थरूप संसारसे धीरे-धीरे उपराम हो जाय। जल्दबाजी न करे; क्योंकि जल्दबाजी करनेसे साधन बढ़िया नहीं होता। एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवाय कुछ भी नहीं है—ऐसा निश्चय करके फिर कुछ भी चिन्तन न करे। परमात्मा स्वतः-स्वाभाविक सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन हैं। 'घन' का अर्थ होता है—ठोस। जैसे, पत्थर या काँच ठोस होता है, इसलिये उसमें सुई नहीं

चुभती। परन्तु परमात्मा पत्थर या काँचसे भी ज्यादा ठोस हैं। कारण कि पत्थर या काँचमें तो अग्नि प्रविष्ट हो जाती है, पर परमात्मामें कोई भी वस्तु प्रविष्ट नहीं हो सकती। ऐसे सर्वथा ठोस परमात्माका साधक चिन्तन करता है तो उलटे उनसे दूर होता है! इसलिये वह जहाँ है, वहीं (निद्रा-आलस्य छोड़कर) बाहर-भीतरसे चुप, शान्त रहनेका स्वभाव बना ले। यह बहुत सुगम और बहुत बढ़िया साधन है। इससे बहुत शान्ति मिलेगी और सब पाप-ताप नष्ट हो जायँगे।

उपराम होनेका तात्पर्य है कि राग-

द्वेष, हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व न हों। जैसे रास्तेमें चल रहे हैं तो कहीं पत्थर पड़ा है, कहीं लकड़ी पड़ी है, कहीं कागज पड़ा है, पर अपना उससे कोई मतलब नहीं होता, ऐसे ही किसी भी क्रिया और पदार्थसे अपना कोई मतलब नहीं रहे—**'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन'** (गीता ३।१८)। उनसे तटस्थ रहे। तटस्थ रहना भी एक विद्या है। साधक तटस्थ रहते हुए सब काम करे तो वह संसारसे असंग हो जाता है। संसारमें लाभ हो, हानि हो, आदर हो, निरादर हो, सुख

हो, दुःख हो, प्रशंसा हो, निन्दा हो, उसमें

तटस्थ रहे तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। अगर वह उसमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक, सुख-दुःख कर लेगा तो भोग होगा, योग नहीं। भोगीका कल्याण नहीं होता। इसलिये तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार॥

(दोहावली ९४)

गीतामें आया है—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥

(६।३)

'जो योग (समता)-में आरूढ़ होना चाहता है, ऐसे मननशील योगीके लिये कर्तव्य-कर्म करना कारण कहा गया है और उसी योगारूढ़ मनुष्यका शम (शान्ति) परमात्मप्राप्तिमें कारण कहा गया है।'

शम (शान्ति)-का अर्थ है—कुछ न करना। जबतक 'करने' के साथ सम्बन्ध है, तबतक प्रकृतिके साथ सम्बन्ध है और जबतक प्रकृतिके साथ सम्बन्ध है, तबतक अशान्ति है, दुःख है, जन्म-

मरण है। प्रकृतिके साथ सम्बन्ध 'न

करने' से मिटेगा। कारण कि क्रिया और पदार्थ दोनों प्रकृतिके हैं। चेतन-तत्त्वमें न क्रिया है, न पदार्थ। क्रिया अनित्य है, अक्रियपना नित्य है। क्रियाका आरम्भ और अन्त होता है, पर अक्रियपना नित्य-निरन्तर ज्यों-का-त्यों रहता है। इसलिये परमात्मप्राप्तिके लिये 'शम' अर्थात् कुछ न करना ही कारण है। हाँ, अगर इस शान्तिका उपभोग किया जायगा तो परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। 'मैं शान्त हूँ'—इस प्रकार शान्तिमें अहंकार लगानेसे और बड़ी शान्ति

है'—इस प्रकार शान्तिमें राजी होनेसे शान्तिका उपभोग हो जाता है। इसलिये शान्तिमें व्यक्तित्व न मिलाये, प्रत्युत ऐसा समझे कि शान्ति स्वतः है। शान्तिका उपभोग करनेसे शान्ति नहीं रहेगी, प्रत्युत चञ्चलता आ जायगी अथवा नींद आ जायगी। उपभोग नहीं करनेसे शान्ति स्वतः रहेगी। बिना क्रिया और बिना अभिमानके जो स्वतः शान्ति होती है, वह 'योग' है। कारण कि उस शान्तिका कोई कर्ता या भोक्ता नहीं है। जहाँ कर्ता या भोक्ता होता है, वहाँ भोग होता है।

भोग होनेपर संसारमें स्थिति होती है।

सम्पूर्ण क्रियाएँ और पदार्थ संसारके और संसारके लिये ही हैं। इसलिये कर्मयोगी इनको अपने और अपने लिये न मानकर संसारकी ही सेवामें लगा देता है। सेवामें लगानेसे उसका क्रिया और पदार्थरूप संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। प्रकृति श्रमरूप है और परमात्मतत्त्व विश्रामरूप है। इसलिये ज्ञानयोगी क्रिया और पदार्थसे असंग होकर विश्रामको स्वीकार करता है। विश्रामको स्वीकार करनेका तात्पर्य है—

अपना जो चिन्मय सत्तामात्र स्वरूप है, उसमें स्वतःसिद्ध स्थितिका अनुभव करना। परन्तु भक्तियोगी भगवदाश्रयको स्वीकार करता है अर्थात् अपना चिन्मय सत्तामात्र स्वरूप भी जिसका अंश है, उस भगवान्‌के आश्रयको स्वीकार करता है। सेवा और विश्रामसे मुक्ति होती है तथा भगवदाश्रयसे प्रेमकी प्राप्ति होती है।

यह एक सिद्धान्त है कि जो सर्वव्यापक तत्त्व होता है, उसकी प्राप्ति किसी क्रियासे नहीं होती। क्रिया करते ही हम

उससे अलग होते हैं। अगर हम कुछ भी क्रिया नहीं करेंगे तो उस परमात्मतत्त्वमें ही स्थिति होगी। इसलिये साधक चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम शान्त रहनेका स्वभाव बना ले।

उससे अलग होते हैं। अगर हम कुछ भी क्रिया नहीं करेंगे तो उस परमात्मतत्त्वमें ही स्थिति होगी। इसलिये साधक चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम शान्त रहनेका स्वभाव बना ले।

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गोरखपुर-२७३००५—गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस ✆ (०५५१) ३३४७२१, फैक्स ३३६११७
visit us at: www.gitapress.org / e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in
दिल्ली-११०००६— २६०९, नयी सड़क ✆ (०११) ३२६९६७८, फैक्स ३२५११४०
कलकत्ता-७००००७—गोविन्दभवन-कार्यालय: ✆ (०३३) २३८६८९४
१५१, महात्मा गाँधी रोड फैक्स (०३३) २३८०२५१
मुम्बई-४००००२— २८२, सामलदास मार्ग (प्रिन्सेज स्ट्रीट),
मेरीनलाइन्स स्टेशनके पास ✆ (०२२) २०७२६३६
कानपुर-२०८००१— २४/५५ बिरहाना रोड ✆ / फैक्स (०५१२) ३५२३५१
पटना-८००००४— अशोकराजपथ, बड़े अस्पतालके सामने ✆ (०६१२) ६६२८७९
सूरत-३९५००१— वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने,
भटार रोड ✆ (०२६१) ३२३७३६२, ३२३८०६५
e-mail : gitapress@hotmail.com/gitapress@worldgetin.com
इन्दौर-४५२००१— जी० ५, श्रीवर्धन,
४ आर. एन. टी. मार्ग ✆ (०७३१) ५२६५१६
हैदराबाद-५०००९६— ४१, ४-४-१, दिलशाद प्लाजा,
सुल्तान बाजार ✆ (०४०) ४७५८३११
कटक-७५३०१२— भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी ✆ (०६७१) ३३५४८१
रायपुर-४९२००९— मित्तल काम्प्लेक्स, गंजपारा,
(छत्तीसगढ़) तेलघानी चौक, ✆ (०७७१) ६३४४३०
वाराणसी-२२१००१— ५९/९, नीचीबाग ✆ (०५४२) ३५३५५१
हरिद्वार-२४९४०१— सब्जीमण्डी, मोतीबाजार ✆ (०१३३) ४२२६५७
ऋषिकेश-२४९३०४—गीताभवन, गङ्गापार, पो० स्वर्गाश्रम ✆ (०१३५) ४३०१२२
" —मुनिकी रेती, ऋषिकेश (फुटकर बिक्री-केन्द्र)
चूरू-३३१००१—ऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क (" ") ✆ (०१५६२) ५२६७४

स्टेशन-स्टाल

दिल्ली जंक्शन (प्लेटफार्म नं० १२); नयी दिल्ली (नं० ८-९); हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली] (नं० ४-५); कोटा [राजस्थान] (नं० १); बीकानेर (नं० १); गोरखपुर [उ०प्र०] (नं० १); कानपुर (नं० १); लखनऊ [एन० ई० रेलवे]; वाराणसी (नं० ४-५); मुगलसराय जं० (नं० ३-४); हरिद्वार (नं० १); पटना जंक्शन (मुख्य प्रवेशद्वार); धनबाद (नं० २-३); मुजफ्फरपुर (नं० १); हावड़ा स्टेशन (नं० ५ तथा १८ दोनोंपर); सियालदा मेन (नं० ८) [illegible] (नं० १); सिकन्दराबाद [आ० प्र०] (नं० १); गुवाहाटी जं० (मुसाफिरखाना), खड़गपुर (नं० १-२) एवं अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।